

अहो भव्यास्ततो नित्यं भवन्तः सारशर्मणे। चित्ते संभावयन्तूच्चैर्नान्यथा जिनभाषितम् ॥१८॥
स जयतु शुभकर्ता वर्द्धमानो जिनेन्द्रः सकलभुवननाथैः पूजितो बोधसांद्रः।
सुनरखचरेन्द्रोत्कृष्टसौख्यं प्रदत्वा फलति परमलक्ष्मीं शाश्वतीं यस्य भक्तिः ॥१९॥

इति कथाकोशे मरीचि-कथा समाप्ता।

४८. गन्धमित्रस्य कथा।

नत्वानन्तगुणाधीशं श्रीजिनं त्रिजगद्धितम्। घ्राणेन्द्रियकथां गन्ध-मित्रस्य रचयाम्यहम् ॥१॥
अयोध्यापत्तने राजा सुधीर्विजयसेनवाक्। राज्ञी विजयमत्याख्या तयोः पुत्रौ बभूवतुः ॥२॥
ज्येष्ठोसौ जयसेनाख्यो द्वितीयो गन्धमित्रकः। नाना सुगन्धपुष्पादौ लम्पटो मधुलिट् यथा ॥३॥
एकदासौ महीनाथ-स्त्रिधा वैराग्ययोगतः। स्वराज्यं ज्येष्ठपुत्राय दत्वा स्नपनपूर्वकम् ॥४॥
गन्धमित्रं लघुं पुत्रं युवराज्ये विधाय च। मुनेः सागरसेनस्य पादमूले सुभक्तितः ॥५॥
दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं मुनिर्जातो विचक्षणः। धर्मकर्मरतो नित्यं भवेत्प्राणी सुलक्षणः ॥६॥

आत्मसुख के चाहने वालों! तुम्हें सच्चे मोक्ष सुख की यदि चाह है तो तुम सदा हृदय में जिनभगवान् के पवित्र उपदेश को स्थान दो। यही तुम्हारा कल्याण करेगा। विषयों की ओर ले जाने वाले उपदेश, कल्याण-मार्ग की ओर नहीं झुका सकते ॥४-१८॥

वे वर्द्धमान-महावीर भगवान् संसार में सदा जय लाभ करें, उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकार का नाश कर चमकता रहे, जो भगवान् जीवमात्र का हित करने वाले हैं, ज्ञान के समुद्र हैं, राजाओं महाराजाओं द्वारा पूज्यनीय हैं और जिसकी भक्ति स्वर्गादि का उत्तम सुख देकर अन्त में अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी से मिला देती है ॥१९॥

४८. गन्धमित्र की कथा

अनन्त गुण-विराजमान और संसार का हित करने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर गन्धमित्र राजा की कथा लिखी जाती है, जो घ्राणेन्द्रिय के विषय में फँसकर अपनी जान गँवा बैठा है ॥१॥

अयोध्या के राजा विजय सेन और रानी विजयवती के दो पुत्र थे। इनके नाम थे जयसेन और गन्धमित्र। इनमें गन्धमित्र बड़ा लम्पटी था। भौर की तरह नाना प्रकार के फूलों के सूँघने में वह सदा मस्त रहता था ॥२-३॥

उनके पिता विजयसेन एक दिन कोई कारण देखकर संसार में विरक्त हो गए। इन्होंने अपने बड़े लड़के जयसेन को राज्य देकर और गन्धमित्र को युवराज बनाकर सागरसेन मुनिराज से योग ले लिया। सच है, जो अच्छे पुरुष होते हैं उनकी धर्म की ओर स्वभाव ही से रुचि होती है ॥४-५॥

जयसेन के छोटे भाई गन्धमित्र को युवराज पद अच्छा नहीं लगा। इसलिए कि उसकी

गन्धमित्रेण तेनापि महातृष्णातुरेण च। राज्यमुद्धाल्य तत्पुर्या ज्येष्ठो निर्घाटितो हठात् ॥७॥
 राज्यलक्ष्मीर्महापापं ज्ञातव्यं प्रायशो भुवि। यत्रासक्तो जनो मूढो हन्ति बन्धूनपि ध्रुवम् ॥८॥
 तदासौ जयसेनश्च राज्यभ्रष्टः सुदुःखितः। तस्य संमारणोपायं स्वचित्ते चिन्तयत्यलम् ॥९॥
 गन्धमित्रः सदा स्त्रीभिः संयुतः सरयूनदीम्। गत्वा तत्र जलक्रीडां घ्राणासक्तः करोति सः ॥१०॥
 तन्मत्वा जयसेनेन ज्येष्ठभ्रात्रा प्रकोपतः। विषवासितपुष्पाणि सुगन्धानि प्रपञ्चतः ॥११॥
 तेन मुक्तानि तन्नद्यां तान्यादाय प्रवेगतः। गन्धमित्रस्तु मूढात्मा पुष्पाण्याघ्राय लम्पटः ॥१२॥
 मृत्वा घ्राणेन्द्रियासक्तः संप्राप्तो नरकं कुधीः। इन्द्रियाणां वशः प्राणी क्षयं यान्ति क्षितौ विधिः ॥१३॥
 एकेनापि वशीकृतोत्र विषयेनोच्चैर्नरेन्द्रात्मजः सम्प्राप्तो नरकं सुदुःखकलितं हा गन्धमित्रः कुधीः।
 मूढो यस्तु समस्तभोगनिरतः कष्टं न किं यास्यति सोऽप्येवं सुविचार्य पंडितजनः श्रीजैनधर्मेस्तु वै ॥१४॥

इति कथाकाशे घ्राणदोषाख्यान गन्धमित्रस्य कथा समाप्ता।

महत्वाकांक्षा राजा होने की थी तब उसने राज्य के लोभ में पड़कर अपने बड़े भाई के विरुद्ध षड्यंत्र रचा। कितने ही बड़े-बड़े कर्मचारियों को उसने धन का लोभ देकर उभारा, प्रजा में से बहुतों को उल्टी-सीधी सुझाकर बहकाया। गन्धमित्र को इसमें सफलता प्राप्त हुई। उसने मौका पाकर बड़े भाई जयसेन को सिंहासन से उतार राज्य से बाहर कर दिया और आप राजा बन बैठा। राजवैभव सचमुच ही महापाप का कारण है। देखिए न, इस राजवैभव के लोभ में पड़कर मूर्खजन अपने सगे भाई की जान तक लेने की कोशिश में रहते हैं ॥६-८॥

राज्य-भ्रष्ट जयसेन को अपने भाई के इस अन्याय से बड़ा दुःख हुआ। उसका उसे ठीक बदला मिले, उस उपाय में अब लग गया। प्रतिहिंसा से अपने कर्तव्य को वह भूल बैठा। उस दिन का रास्ता वह बड़ी उत्सुकता से देखने लगा जिस दिन गन्धमित्र को वह लात मारकर अपने हृदय को सन्तुष्ट करे। गन्धमित्र लम्पटी तो था ही, सो रोज-रोज अपनी स्त्रियों को साथ ले जाकर सरयू नदी में उनके साथ जलक्रीड़ा, हँसी, दिल्लगी किया करता था। जयसेन ने इस मौके को अपना बदला चुकाने के लिए बहुत अच्छा समझा। एक दिन उसने जहर के पुट लिये अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे मनोहर फूलों को ऊपर की ओर से नदी में बहा दिया। फूल गन्धमित्र के पास होकर बहे जा रहे थे। गन्धमित्र उन्हें देखते ही उनके लेने के लिए झपटा। कुछ फूलों को हाथ में ले वह सूँघने लगा। फूलों के विष का उस पर बहुत जल्दी असर हुआ और देखते-देखते वह चल बसा। मरकर गन्धमित्र घ्राणेन्द्रिय के विषय की अत्यन्त लालसा से नरक गया। सो ठीक है, इंद्रियों के अधीन हुए लोगों का नाश होता ही है ॥९-१३॥

देखिये, गंधमित्र केवल एक विषय का सेवन कर नरक में गया, जो कि अनन्त दुःखों का स्थान है। तब जो लोग पाँचों इंद्रियों के विषयों का सेवन करने वाले हैं, वे क्या नरकों में न जाएँगे? अवश्य जाएँगे। इसलिए जिन बुद्धिमानों को दुःख सहना अच्छा नहीं लगता या वे दुःखों को चाहते नहीं हैं उन्हें विषयों की ओर से अपने मन को खींचकर जिनधर्म की ओर लगाना चाहिए ॥१४॥

४९. गन्धर्वसेनायाः कथा

सर्वसौख्यप्रदं नत्वा पादद्वैतं जिनेशिनः। वक्ष्ये गन्धर्वसेनायाश्चरित्रं मूढचेतसः ॥१॥
 पुरे पाटलिपुत्राख्ये राजा गन्धर्वदत्तकः। राज्ञी गन्धर्वदत्ताभूतयोः पुत्री बभूव च ॥२॥
 नाम्ना गन्धर्वसेनासौ नाना गान्धर्वशास्त्रवित्। यो जयत्यत्र मां धीरो लसद्गन्धर्वविद्यया ॥३॥
 स मे भर्ता भवत्येव नान्यथेति प्रगर्विता। प्रतिज्ञां च समादाय क्षत्रियाञ्जयति स्म सा ॥४॥
 श्रुत्वा तां वार्त्तिकां धीमान्योदनाख्यपुरात्स्वयम्। युतः पञ्चशतैश्छात्रैः पांचालस्तत्कलाचणः ॥५॥
 उपाध्यायः समागत्य वादार्थी परया मुदा। तत्र पाटलिपुत्रस्य स्थित्वोद्याने मनोहरे ॥६॥
 समायात यदा कोपि सूचनीयः स मे ध्रुवम्। इत्युक्त्वाशोकवृक्षाधः सुप्तोसौ छात्रकान्प्रति ॥७॥
 पुरं दृष्टुं गतास्तेऽपि छात्रकाः कौतुकात्तदा। तत्र गन्धर्वसेना सा वीक्षितुं तं समागता ॥८॥
 पृष्ट्वा छात्रं च तन्नाम दृष्ट्वा तं निद्रयाश्रितम्। वीणासमूहमध्यस्थं लालालिप्तमुखाम्बुजम् ॥९॥

४९. गन्धर्वसेना की कथा

सब सुखों के देने वाले जिनभगवान् के चरणों को नमस्कार कर मूर्खिणी गन्धर्वसेना का चरित लिखा जाता है। गन्धर्वसेना भी एक विषय की अत्यासक्ति से मौत के पंजे में फँसी थी ॥१॥

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा गन्धर्वदत्त की रानी गन्धर्वदत्त के गन्धर्वसेना नाम की एक कन्या थी। गन्धर्वसेना गानविद्या की बड़ी जानकार थी और इसीलिए उसने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो मुझे गाने में जीत लेगा “वही मेरा स्वामी होगा, उसी की मैं अंकशायिनी बनूँगी।” गन्धर्वसेना की खूब सूरती की मनोहारी सुगन्ध की लालसा से अनेक क्षत्रियकुमार भौंरे की तरह खिंचे हुए आते थे, पर यहाँ आकर उन सबको निराश-मुँह लौट जाना पड़ता था। गन्धर्व सेना के सामने गाने में कोई नहीं ठहर पाता था ॥२-४॥

एक पांचाल नाम का उपाध्याय गानशास्त्र का बहुत अच्छा अभ्यासी था। उसकी इच्छा भी गन्धर्वसेना को देखने की हुई वह अपने पाँच सौ शिष्यों को साथ लिए पटना आकर एक बगीचे में ठहरा। समय गर्मी का था और बहुत दूर की मंजिल तय करने से पांचाल थक भी गया था। इसलिए वह अपने शिष्यों से यह कहकर, कि कोई यहाँ आए तो मुझे जगा देना, एक वृक्ष की ठंडी छाया में सो गया। इधर वह सोया और उधर इसके बहुत से विद्यार्थी शहर देखने को चल दिये ॥५-८॥

गन्धर्वसेना को जब पांचाल के आने और उसके पाण्डित्य की खबर लगी। वह इसे देखने को आई उसने उसे बहुत-सी वीणाओं को आस-पास रखे सोया देखकर समझा कि वह विद्वान् तो बहुत भारी है, पर जब उसके लार बहते हुए मुँह पर उसकी नजर गई तो उसे पांचाल से बड़ी नफरत हुई उसने फिर उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा और जिस झाड़ू के नीचे पांचाल सोया हुआ था। उसकी चन्दन, फूल वगैरह से पूजा कर वह उसी समय अपने महल लौट आई। गन्धर्वसेना के जाने के बाद जब पांचाल की नींद खुली और उसने वृक्ष को गंध-पुष्पादि से पूजा हुआ पाया तो कुछ